ओ३म्

भूर् भुवर् स्वर्॥

महाव्याहृतिव्याख्या

प० गणेशप्रसाद शर्मा सम्पादक भारतसुदशाप्रवर्त्तक
पत्र आर्यसमाज फ़र्रुख़ाबाद लिखित ।

श्यामलाल शर्म्मा के प्रबन्ध से

सरस्वतीयन्त्रालय–इटावा में

छपाया

प्रथमवार ५००] संवत् १९५५ [मूल्य

तैतिरीय उपनिषद् के शिक्षाध्याय में पूर्वोक्त व्याहृतियों की व्याख्या अति उत्तम रीति से वर्णित है—वरन महाचमस ऋषि के पुत्र माहचमस्य के प्रमाण से चौथी महः व्याहृति का भी वर्णन किया गया है परन्तु हमने यहां प्रागुक्त ३ के उपयोगी मन्त्र उठाये हैं—

भूरिति वा अयंलोकः—भुवइत्यन्तरिक्षम् । सुवरित्यसौ लोकः ॥ १ ॥

भूरिति वा अग्निः—भुवइति वायुः । सुवरित्यादित्यः। भूरिति वा ऋचः । भुवइति सामानि। सुवरिति यजूंषि ॥२॥ भूरितिवैप्राणः । भुवइत्यपानः । सुवरिति व्यानः। ता यो वेद । स वेद ब्रह्म । सर्वेऽस्मैदेवा बलिमावहन्ति ॥३॥ असौ लोको यजूंषि वेदद्वेच—

भूरिति वा अयंलोकः—भूः शब्द इस लोक (पृथ्वी) का वाचक है और आग का भी—क्योंकि पृथ्वी के समस्त पदार्थों में आग अर्थात् "भूर्" शब्द की व्यापकता पाई जाती है ऐसा कोई पदार्थ नहीं जिस में थोड़ी वा वहुत उष्णता न हो—वर्फ जैसी ठंडी वस्तु में भी अग्नि रहता है। वर्फ के दो टुकड़े रगड़ने से पिघलते हैं उस का कारण यही है कि इस क्रिया से भीतर का अग्नि प्रकट हो उन को द्रवीभूत (पतला) कर देती है। परमात्माने जड़ पदार्थों में यह ऐसा अच्छा गुण दिया है कि इसी के कारण पदार्थों में विभाजकता (जुदाई) रहती है यदि यह गुण न होता तो सारा ब्रह्माण्ड आकर्षण वल से मिल कर एक पिण्ड हो जाता—तेज के समुदाय का नाम अग्नि है—अन्तरिक्ष में सब से अधिक तेजपुंज सूर्य है उस का तेज पृथ्वी में प्रवेश करता है प्रति विपल में तेज ३२८०० कोश जाता है पृथ्वी के पहिले सूर्य बना—यह ऋग्वेद के प्रमाण से सिद्ध होता है

सूर्याचन्द्रमसौधाता यथापूर्वमकल्पयत् ॥ दिवं च पृथिवीञ्चान्तरिमथोस्वः ऋ० अ० ८ ॥ अ० ८ व० ४८ ॥

इन में सूर्य चन्द्र के बाद पृथ्वी का क्रम आया है—परमात्मा ने सूर्य को पृथ्वी से नौकरोड़ पचास लाखमील दूर रक्खा है यह उन की पूर्ण विद्वत्ता का

परिचय है। विज्ञान से निश्चय हुआ है कि किसी वस्तु से तेज निकल कर जितनी दूर जाता है उतनाही उस का वल घटता जाता है पदार्थ से जब तेज निकलता है तो १ हाथ दूर जाकर जितना तीखा रहता है दो हाथ के अन्तर पर आधा और तीन हाथ पर तिहाई नहीं रहता—इस हिसाब का गुरु यह है कि जिस जगह की दूरी की जितनी संख्या हो उस को उसी से गुणा करके जो अंक हो उसका एक बटा उतना भाग तेज होगा सो जगन्नियन्ता प्रभुने सूर्य का ऐसा स्थान रक्खा जहां से तेज जितना जीवनोपयोगी है उतना ही मिलता रहता है यदि धरती थोड़ा उस के निकट और सरका दी जाय तो सर्वस्वाहा हो जावे—

इसी तेज के गुणों को जानकर रेल और विमान आदि में गर्मी दी जाती है। और धातु गलाये जाते हैं फोरनहिट साहब ने जो तापमान यन्त्र बनाया है उस के अनुसार मनुष्य शरीर का रुधिर ९८ अंश गरम है इसी से शरीर विस्तृत रहता है होम में जो पदार्थ अग्नये स्वाहा आदि मन्त्रों से आहुति किये जाते हैं वे भिन्न २ हो कर भाफ की सूरत में आजाते हैं इसी से शुद्ध वृष्टि होती है। वर्षा का कारण भी अग्नि है समुद्रादि का जल सूर्य और पृथ्वी के तेज से उष्ण होकर ऊपर को उठता है पुनः ठंडी जगह में जलकण हो वरसता है। किसी पदार्थ को भाफ रूप करने में अधिक और किसी को न्यून तेज की आवश्यकता होती है जल २१२ पारा ६६२ और तेजाव ६४० तावांश प्रमाण से भाफ हो जाता तेज गुण से पदार्थ का आयतन भी वढ़ता है अतः समस्त पदार्थोंकी वृद्धि का हेतु भूः (अग्नि) है॥

"भूरिति वैऋचः" भू शब्द ऋग्वेद का भी वाचक है "अग्निमीडे पुरोहितम्" यह ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र है ज्ञानस्वरूप परमेश्वर व अग्नि सब का हितैषी होने से स्तुति योग्य है—

"भूरिति वैप्राणः" भू शब्द प्राण वायु का भी बाचक है यहां प्राण से प्रयोजन जीवात्मा से नहीं है। यथार्थ में यह भी एक अग्नि कारण है अर्थात् श्वास लेने पर वायु भीतर जाकर रुधिर पर धक्का देता है उस से गरमी उत्पन्न होती है वह लौटती वायु के साथ आंख, कान, मुख, और नासिका में अपना प्रभाव करती है इसी से ये स्थान शुद्ध पवित्र और बलवान् रहते हैं। इन स्थानों में व्यापने वाले वायु को प्राण बोलते हैं—ऐसे ही अन्य अपानादि १० प्राणों के काम न्यारे २ होते हैं—प्रश्नोपनिषद् में भी कहा है।

महाव्याहृति व्याख्या ॥

[पूर्व प्रकाशितानन्तर दिसम्बर के पत्र के १४ वें पेज से आगे]

पायूपस्थेऽपानं चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते । मध्येतु समानः एषह्येतद्धुतमन्नं समुन्नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥

अर्थात् आंख कान मुख और नाक में प्राण वायु स्थित है । बाहरी पवन अपान चेष्टा से भीतर जाता है व्यान से सारे शरीर में व्याप्त होता है और भीतर के सारे शरीर को धोता है पुनः मलिन वायु प्राण चेष्टा से वाहर निकलता है इस में सन्देह नहीं कि इस प्राण का कार्य वन्द होते ही जीव निकल जाता है उसी का नाम मरना वा प्राण निकलना है–होम में आघारावाज्यभागाहुतियों में "ओ३म् अग्नयेस्वाहा" प्रथम मन्त्र है और व्याहृति आहुतियों में "भूरग्नये स्वाहा" पहिला है तथा उभयकालीन मन्त्रों में " भूरग्नये प्राणाय स्वाहा" यह प्राथमिक मन्त्र है इन मंत्रों का अर्थ विचारने से चित्त को परम आह्लाद प्राप्त होता है और वेदों की गंभीर विद्या का परिचय मिलता है

"भूः" शब्द परमात्मा का भी वाचक है क्योंकि वह जगत् के जीवन का हेतु है प्राणों से भी प्रिय है । वरन प्राणों का प्राण है । सामवेद के तलवकार उपनिषद् में कहा भी है ।

यत्प्राणेन प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते । तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

जो प्राण द्वारा श्वास नहीं लेता जिस के कारण से प्राण अपना काम करता है उस प्राणों के प्राण परमप्रभु को तू ब्रह्म जान और उसकी उपासना कर ।

भुवर्–भुव इत्यन्तरिक्षम्–पवन का आधार अंतरिक्ष का नाम भुवर् है और यह शब्द वायु का भी वाचक है " भुवइतिवायुः " जैसे प्राण अर्थात् अग्नि जीवन का हेतु है उसी प्रकार पवन भी है यदि पवन न हो तो हम क्षण भर भी जी नहीं सकते समुद्र में मछली की भान्ति हवा में जीव रहते हैं इदानीं विज्ञान से निश्चय हुआ कि एक वर्ग इञ्च पर हवा का बोझ साढ़े सात सेर है यह एक अद्भुत पदार्थ है जो अपनी मूलदशा में अधिक स्थान पाकर उस सब में व्याप जाता है और थोड़ी जगह में भी दब कर आजाता है सौ घन हाथ के स्थान में जितनी हवा भरी हो उसे दबा कर १ एकघन हाथ के ठौर में रख सकते हैं

परिचय है। विज्ञान से निश्चय हुआ है कि किसी वस्तु से तेज निकल कर जितनी दूर जाता है उतनाही उस का बल घटता जाता है पदार्थ से जब तेज निकलता है तौ १ हाथ दूर जाकर जितना तीखा रहता है दो हाथ के अन्तर पर आधा और तीन हाथ पर तिहाई नहीं रहता—इस हिसाब का गुरू यह है कि जिस जगह की दूरी की जितनी संख्या हो उस को उसी से गुणा करके जो अंक हो उसका एक बटा उतना भाग तेज होगा सो जगन्नियन्ता प्रभुने सूर्य का ऐसा स्थान रक्खा जहां से तेज जितना जीवनोपयोगी है उतना ही मिलता रहता है यदि धरती थोड़ा उस के निकट और सरका दी जाय तो सर्वस्वाहा हो जावे—

इसी तेज के गुणों को जानकर रेल और विमान आदि में गर्मी दी जाती है। और धातु गलाये जाते हैं फोरनहिट साहब ने जो तापमान यन्त्र बनाया है उस के अनुसार मनुष्य शरीर का रुधिर ९८ अंश गरम है इसी से शरीर विस्वृत रहता है होम में जो पदार्थ अग्नये स्वाहा आदि मन्त्रों से आहुति किये जाते हैं वे भिन्न २ हो कर भाफ की सूरत में आजाते हैं इसी से शुद्ध वृष्टि होती है। वर्षा का कारण भी अग्नि है समुद्रादि का जल सूर्य और पृथ्वी के तेज से उष्ण होकर ऊपर को उठता है पुनः ठंडी जगह में जलकण हो बरसता है। किसी पदार्थ को भाफ रूप करने में अधिक और किसी को न्यून तेज की आवश्यकता होती है जल २१२ पारा ६६२ और तेजाव ६४० तावांश प्रमाण से भाफ हो जाता तेज गुण से पदार्थ का आयतन भी बढ़ता है अतः समस्त पदार्थों की वृद्धि का हेतु भूः (अग्नि) है ॥

“ भूरिति वैऋचः ” भू शब्द ऋग्वेद का भी वाचक है “अग्निमीडे पुरोहितम् ” यह ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र है ज्ञानस्वरूप परमेश्वर व अग्नि सब का हितैषी होने से स्तुति योग्य है—

“भूरिति वैप्राणः” भू शब्द प्राण वायु का भी वाचक है यहां प्राण से प्रयोजन जीवात्मा से नहीं है। यथार्थ में यह भी एक अग्नि कारण है अर्थात् श्वास लेने पर वायु भीतर जाकर रुधिर पर धक्का देता है उस से गरमी उत्पन्न होती है वह लौटती वायु के साथ आंख, कान, मुख, और नासिका में अपना प्रभाव करती है इसी से ये स्थान शुद्ध पवित्र और बलवान् रहते हैं। इन स्थानों में व्यापने वाले वायु को प्राण बोलते हैं—ऐसे ही अन्य अपानादि १० प्राणों के काम न्यारे २ होते हैं—प्रश्नोपनिषद् में भी कहा है।

महाव्याहृति व्याख्या ॥

[पूर्व प्रकाशितानन्तर दिसम्बर के पत्र के १४ वें पेज से आगे]

पायूपस्थेऽपानं चक्षुः श्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते । मध्येतु समानः एषह्येतद्धुतमन्नं समुन्नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥

अर्थात् आंख कान मुख और नाक में प्राण वायु स्थित है । बाहरी पवन अपान चेष्टा से भीतर जाता है व्यान से सारे शरीर में व्याप्त होता है और भीतर के सारे शरीर को धोता है पुनः मलिन वायु प्राण चेष्टा से बाहर निकलता है इस में सन्देह नहीं कि इस प्राण का कार्य बन्द होते ही जीव निकल जाता है उसी का नाम मरना वा प्राण निकलना है—होम में आघारावाज्यभागाहुतियों में "ओ३म् अग्नयेस्वाहा" प्रथम मन्त्र है और व्याहृति आहुतियों में "भूरग्नये स्वाहा" पहिला है तथा उभयकालीन मन्त्रों में "भूरग्नये प्राणाय स्वाहा" यह प्राथमिक मन्त्र है इन मंत्रों का अर्थ विचारने से चित्त को परम आह्लाद प्राप्त होता है और वेदों की गंभीर विद्या का परिचय मिलता है

"भूः" शब्द परमात्मा का भी वाचक है क्योंकि वह जगत् के जीवन का हेतु है प्राणों से भी प्रिय है । वरन प्राणों का प्राण है । सामवेद के तलवकार उपनिषद् में कहा भी है ।

यत्प्राणेन प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते। तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥

जो प्राण द्वारा श्वास नहीं लेता जिस के कारण से प्राण अपना काम करता है उस प्राणों के प्राण परमप्रभु को तू ब्रह्म जान और उसकी उपासना कर ।

भुवर्—भुव इत्यन्तरिक्षम्—पवन का आधार अंतरिक्ष का नाम भुवर् है और यह शब्द वायु का भी वाचक है "भुवइतिवायुः" जैसे प्राण अर्थात् अग्नि जीवन का हेतु है उसी प्रकार पवन भी है यदि पवन न हो तो हम क्षण भर भी जी नहीं सकते समुद्र में मछली की भान्ति हवा में जीव रहते हैं इदानीं विज्ञान से निश्चय हुआ कि एक वर्ग इञ्च पर हवा का बोझ साढ़े सात सेर है यह एक अद्भुत पदार्थ है जो अपनी मूलदशा में अधिक स्थान पाकर उस सब में व्याप जाता है और थोड़ी जगह में भी दब कर आजाता है सौ घन हाथ के स्थान में जितनी हवा भरी हो उसे दबा कर १ एकघन हाथ के ठौर में रख सकते हैं

एक प्रकार की भुशुंडी (वंदूक) होती है उस में वारूद की जगह दवादवा कर हवा भर देते हैं इस से भी वैसा ही शब्द होता और गोली छूटती है जैसा कि गोली बारूद भरी वंदूक से होता है। यदि कोई चाहे कि पवन को पानी की तरह किसी वरतन के आधे वा पौने भाग तक भर कर शेष को खाली रक्खें। ऐसा नहीं हो सकता। जितना आप खाली रक्खेंगे उस में भी हवा भर जायगी–

पवन जैसे जीवों को जिलाने का कारण उसी प्रकार वृष्टि में भी सहायक है भूः अर्थात् अग्निवल से जल छिन्न भिन्न हो हलका होने से वायु के सहारे ऊपर को उठता है और इसी आश्रय से वादलरूप होने पर इधर से उधर को जाता है। परमपिता परमेश्वर मानो वायुरूपी रेल से यह बड़ा जलरूपी माल का ढेर अभीष्ट स्थानों को पहुंचाते हैं॥

एक घन इंच पानी गरम होने से १७२८ घनइञ्च भर भाफ होती है और यही भाफ जब पवन लगने से ठंडी होती तो १ घनइञ्च प्रमाण पानी वनजाता है पवन में जब ईश्वर के दिए प्रमाण से अधिक जल हो जाता तो वायु दूषित होजाता है और वह होम करने से शुद्ध होता है जिस के लिये " भुवर्वायवे स्वाहा " इत्यादि मंत्र हैं–फलतः भुवः शब्दवाच्य वायु परम जीवन है।

भुवः शब्द से कौन से प्राण का ग्रहण करना चाहिये सो दिखलाते हैं "भुवइत्यपानः" भुवः शब्द से अपान चेष्टा वाले प्राण का ग्रहण करना चाहिये जो मलमूत्र के स्थानों में विचरता हुआ उन को शुद्ध करता है "पायूपस्थेऽपानं" हवा को भीतर लेकर कटि के नीचे की दोनों कर्मेन्द्रियों को सम्हाले रहना अपान का काम है। यदि यह चेष्टा हमारे शरीरों में न होती तो किसी को न तो भूख लगती और न रुधिर की वृद्धि होने पाती और मल का ढेर शरीर में होकर जीवन असंभव होजाता–अपान प्राण की यथावत् चेष्टा रहने के लिये परमात्मा की स्तुतिपूर्वक "भुवर्वायवेऽपानायस्वाहा" इस मन्त्र से प्रार्थना रूप आहुति दी जाती है।

" भुव इति सामानि " भुवः शब्द सामवेद को भी कहता है। सामवेद की स्वर प्रक्रिया अर्थात् षडजादि स्वरों का यथावत् उच्चारण पूर्वक ज्ञानका वर्णन भी वायु से सम्बन्ध रखता है। क्योंकि विना वायु के स्वरों की उत्पत्ति नहीं होती। मन्द और तीव्र शब्द उच्चारण करने वाले के न्यूनाधिक्य वल लगाने पर निर्भर है–"आकाशवायुः प्रभवः शरीरात्समुच्चरन् वक्त्रमुपैतिनादः स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः"पाणिनि जीने कहा है कि आकाश और वायु के संयोग से उत्पन्न होने वाला नाभि के नीचे से ऊपर को

उठता हुआ जो मुख को प्राप्त होता है उस को नाद कहते हैं और वह कण्ठ आदि स्थानों में बंट कर वर्णभाव को प्राप्त होता है। उसी का नाम शब्द है।

सामवेद में प्रथम छन्द आर्चिक है उस में छः अध्याय हैं–पहिले मन्त्र में ३ तीन गान निकलते हैं। पहिले गान का नाम पर्क्क दूसरे का बर्हिष्य, और तीसरे को भी पर्क्क ही बोलते हैं। सो सामवेद सस्वर पढ़ने में परम आनन्द प्राप्त होता है॥

भुवः शब्द परमात्मा का भी वाचक है कृपासिन्धु जगदीश्वर अपने धर्मात्मा सेवकों और मुमुक्षुओं को सब दुखों से अलग करके सदा सुख में रखते हैं। इस कारण उन का नाम भुवः है॥

स्वर्–" सुवः इति असौ लोकः "। अन्तरिक्ष के ऊपर सुख का साधन होनेसे स्वः शब्द सूर्य का वाचक है। सूर्य जीवों के जीवन का हेतु है। शरीरों का पोषण करता इस लिये इसे पूषा बोलते हैं। प्रकाश देने के कारण प्रभाकर और दिनकर कहते हैं। वनस्पत्यादि के उगने में गर्मी पहुंचाता है। इसलिये सविता नाम से पुकारा जाता है। एवं गुणों के अनुसार अनेक नाम हैं। ऋग्वेद में कहा है॥

" विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्। सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः "

असंख्य किरणों वाला अनेक प्रकारों से भोक्तृ शक्तियों में अपने तेज से व्याप्त, प्रजा के जीवन का हेतु यह प्रत्यक्ष सूर्य है। सो उदय होकर तपता है

संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं एक भोग करने वाले दूसरे भोग में आने वाले अर्थात् भोक्तृ और भोग्यशक्ति इन को प्राण व रयि नाम से भी पुकारते हैं इन में सूर्य भोक्तृ शक्ति है। प्रश्नोपनिषद् में कहा है॥

" आदित्योहवैप्राणः रयिरेव चन्द्रमा " भोग कराने वाला सूर्य प्राण रूप है–और भोक्तृशक्ति चन्द्रमा रयि है। यदि सूर्य न होतो मनुष्यादि प्राणी किसी पदार्थका भोग नहीं कर सकते।विना प्रकाश दीवार की नाईं रहा करतेहैं॥

यहां पर जो सूर्य को प्राण शब्द से लिखा है उस से प्राण वायु नहीं समझना। प्राण से अभीष्ट उस भोक्तृशक्ति से है क्षुधा लगाती है और खाये हुए

एक प्रकार की भुशुंडी (बंदूक) होती है उस में बारूद की जगह दबादवा कर हवा भर देते हैं इस से भी वैसा ही शब्द होता और गोली छूटती है जैसा कि गोली बारूद भरी बंदूक से होता है। यदि कोई चाहे कि पवन को पानी की तरह किसी बरतन के आधे वा पौने भाग तक भर कर शेष को खाली रक्खें। ऐसा नहीं हो सकता। जितना आप खाली रक्खेंगे उस में भी हवा भर जायगी—

पवन जैसे जीवों को जिलाने का कारण उसी प्रकार वृष्टि में भी सहायक है भूः अर्थात् अग्निवल से जल छिन्न भिन्न हो हलका होने से वायु के सहारे ऊपर को उठता है और इसी आश्रय से बादलरूप होने पर इधर से उधर को जाता है। परमपिता परमेश्वर मानो वायुरूपी रेल से यह बड़ा जलरूपी माल का ढेर अभीष्ट स्थानों को पहुंचाते हैं॥

एक घन इंच पानी गरम होने से १७२८ घनइञ्च भर भाफ होती है और यही भाफ जब पवन लगने से ठंडी होती तो १ घनइञ्च प्रमाण पानी बनजाता है पवन में जब ईश्वर के दिए प्रमाण से अधिक जल हो जाता तो वायु दूषित होजाता है और वह होम करने से शुद्ध होता है जिस के लिये "भुववायवे स्वाहा" इत्यादि मंत्र हैं—फलतः भुवः शब्दवाच्य वायु परम जीवन है।

भुवः शब्द से कौन से प्राण का ग्रहण करना चाहिये सो दिखलाते हैं "भुवइत्यपानः" भुवः शब्द से अपान चेष्टा वाले प्राण का ग्रहण करना चाहिये जो मलमूत्र के स्थानों में विचरता हुआ उन को शुद्ध करता है "पायूवस्थेऽपानं" हवा को भीतर लेकर कटि के नीचे की दोनों कर्मेन्द्रियों को सम्हाले रहना अपान का काम है। यदि यह चेष्टा हमारे शरीरों में न होती तो किसी को न तो भूख लगती और न रुधिर की वृद्धि होने पाती और मल का ढेर शरीर में होकर जीवन असंभव होजाता—अपान प्राण की यथावत् चेष्टा रहने के लिये परमात्मा की स्तुतिपूर्वक "भुववायवेऽपानायस्वाहा" इस मन्त्र से प्रार्थना रूप आहुति दी जाती है।

"भुव इति सामानि" भुवः शब्द सामवेद को भी कहता है। सामवेद की स्वर प्रक्रिया अर्थात् षडजादि स्वरों का यथावत् उच्चारण पूर्वक गानका वर्णन भी वायु से सम्बन्ध रखता है। क्योंकि विना वायु के स्वरों की उत्पत्ति नहीं होती। मन्द और तीव्र शब्द उच्चारण करने वाले के न्यूनाधिक्य वल लगाने पर निर्भर है—"आकाशवायुः प्रभवः शरीरात्समुच्चरन् वक्त्रमुपैतिनादः स्थानान्तरेषु प्रविभज्यमानो वर्णत्वमागच्छति यः स शब्दः" पाणिनि जीने कहा है कि आकाश और वायु के संयोग से उत्पन्न होने वाला नाभि के नीचे से ऊपर को

उठता हुआ जो मुख को प्राप्त होता है उस को नाद कहते हैं और वह कण्ठ आदि स्थानों में बंट कर वर्णभाव को प्राप्त होता है। उसी का नाम शब्द है।

सामवेद में प्रथम छन्द आर्चिक है उस में छः अध्याय हैं–पहिले मन्त्र में ३ तीन गान निकलते हैं। पहिले गान का नाम पर्क्क दूसरे का वर्हिष्य, और तीसरे को भी पर्क्क ही बोलते हैं। सो सामवेद सस्वर पढ़ने में परम आनन्द प्राप्त होता है॥

भुवः शब्द परमात्मा का भी वाचक है कृपासिन्धु जगदीश्वर अपने धर्मात्मा सेवकों और मुमुक्षुओं को सब दुखों से अलग करके सदा सुख में रखते हैं। इस कारण उन का नाम भुवः है॥

स्वर्–“ सुवः इति असौ लोकः ” । अन्तरिक्ष के ऊपर सुख का साधन होनेसे स्वः शब्द सूर्य का वाचक है। सूर्य जीवों के जीवन का हेतु है। शरीरों का पोषण करता इस लिये इसे पूषा बोलते हैं। प्रकाश देने के कारण प्रभाकर और दिनकर कहते हैं। वनस्पत्यादि के उगने में गर्मी पहुंचाता है। इसलिये सविता नाम से पुकारा जाता है। एवं गुणों के अनुसार अनेक नाम हैं। ऋग्वेद में कहा है॥

“ विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । सहस्त्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदत्येष सूर्यः ”

असंख्य किरणों वाला अनेक प्रकारों से भोक्तृ शक्तियों में अपने तेज से व्याप्त, प्रजा के जीवन का हेतु यह प्रत्यक्ष सूर्य है। सो उदय होकर तपता है

संसार में दो प्रकार के पदार्थ हैं एक भोग करने वाले दूसरे भोग में आने वाले अर्थात् भोक्तृ और भोग्यशक्ति इन को प्राण व रयि नाम से भी पुकारते हैं इन में सूर्य भोक्तृ शक्ति है। प्रश्नोपनिषद् में कहा है॥

“ आदित्योहवैप्राणः रयिरेव चन्द्रमा ” भोग कराने वाला सूर्य प्राण रूप है–और भोक्तृशक्ति चन्द्रमा रयि है। यदि सूर्य न होतो मनुष्यादि प्राणी किसी पदार्थका भोग नहीं कर सकते।विना प्रकाश दीवार की नाईं रहा करतेहैं॥

यहां पर जो सूर्य को प्राण शब्द से लिखा है उस से प्राण वायु नहीं समझना। प्राण से अभीष्ट उस भोक्तृशक्ति से है क्षुधा लगाती है और खाये हुए

अन्न का परिपाक करके रस बनाती है। अर्थात् भोगने योग्य पदार्थों का भोग सूर्य ही करता है। और पदार्थों में भांति २ के रंग भी इसी से उपजते हैं॥

इस समय के विज्ञान वेत्ताओं ने सूर्य की किरण सात रंग की मानी है। संस्कृत में सूर्य को सप्ताश्व तथा सप्ताश्ववाहन कहा है। उस का भी यही अभिप्राय है कि सूर्य के तेज की व्याप्ति सात प्रकार से होती है।

प्रत्येक पदार्थ जो नाना रंग के दिखाई देते हैं उन का कारण सूर्य है। पदार्थों में ग्रहण करने की शक्ति होती है इसलिये जिस रंगकी किरण को जो पदार्थ ग्रहण नहीं करता वही उस पर से फिरती है। इस कारण उस में वैसा ही रंग प्रतीत होता है॥

सूर्य का नाम तापन भी है। क्योंकि संसार के पदार्थों को तपाता है। इस तपाने से शोधन होता है। हवा में नियत प्रमाण से जो तरी (रतूवत) आजाती है वह सूर्य से भी दूर होती है (जैसे कि अग्नि जलाकर होम करने पर हुआ करती है) तदर्थ "स्वरादित्याय स्वाहा" यह व्याहृति युक्त मन्त्र पूर्वोक्त प्रकार है–

सूर्य द्वारा एक और प्रकार से पृथ्वी पर शोधन होता है वह यह है कि वैशाख जेठ में जब हवा पर तीव्र किरणें पड़ती हैं तो ऊपर की वायु हलकी होकर विखरती है * उस खाली जगह का भराव ठंडी हवा से होता है ऐसा होने में एक प्रकार की हवा का दूसरी भान्ति की हवा पर बड़ा धक्का लगता है तब आंधी आती है वह वेगपूर्वक घर के भीतर उन २ (तहखाना आदि) स्थानों तक में जा घुसती है जहां की वसी हुई दुर्गन्धित वायु सहसा नहीं निकल सकती–इस प्रकार भूमण्डल का शोधन होता है–

जल भी सूर्य के कारण मिलता है कुआं तालाब आदि में जो जल है वहभी सूर्य के ताप से प्राप्त है। अर्थात् सूर्य की गर्मी से समुद्रादि से भाफ उठती है और वह शीत से घनी हो जाती है इस लिये धुआं की भांति दीख पड़ती है इसी के समुदाय को मेघ कहते हैं। जब वायु में ३२ तापांश से कम उष्णता रहती तब वही भाफ के जलकण वर्फ होकर गिरने लगते हैं ऊपर की भाफ हो कर जलविन्दु होजाय और उसी समय कहीं वहां पर की वायु भी शीतल हो

* वायु अग्नि आदि शब्द पुल्लिंग है पर भाषा में इन का व्यवहार स्त्रीलिंग के समान होता है॥

तो वही जलकण ओला बन जाते हैं और सूर्य की सामान्य गर्मी जब वायु में रहती तब पानी बरसता है मनुस्मृति में भी कहा है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिस्सम्य-गादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥

अग्नि में जो आहुति दी जाती वह द्युस्थानी देवता सूर्य को प्राप्त होती और आदित्य (सूर्य) से वृष्टि होती है जैसा कि ऊपर लिख आये है वर्षा से अन्न और अन्न से वीर्य बनता है । उसी से प्रजा उत्पन्न होती हैं । सुवः इतिव्यानः स्वः व्यान वायु का भी वाचक है जो कि सारे शरीर में विचरण करता है इस में प्रश्नोपनिषद् का प्रमाण है ॥

हृदिह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासांशतं शतमेकैकस्यां द्वा सप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखा नाडी सहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥

जीवात्मा जो कि हृदय में रहता है इसी हृदय में १०१ नाडी हैं उन में प्रत्येक नाड़ी की सौ सौ शाखा नाडी हैं (१०१×१००) अर्थात् सब १०१०० हैं। इन शाखाओं में भी पुनः एक एक शाखा की ७२ हज़ार प्रतिशाखा हैं इसलिये (७२०००+१०१००) ७२७२००००० प्रतिशाखा हैं सब मिल कर (१०१×१०१००+ ७२७२०००००) ७२७२१०२०१ बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दसहजार दो सौ एक नाड़ी होती हैं इन में व्यान वायु की चेष्टा होती है जैसा कि ऊपर लिखआये हैं कि अपान से पवन देह के भीतर जाती और व्यान से सारे नसों में व्याप्त होकर रुधिर की शुद्धि होती पुनः प्राण चेष्टा से वह अशुद्ध वायु बाहर निकल जाता है व्यान चेष्टा ही के कारण हम को हवा का बोझ जान नहीं पड़ता क्योंकि उस की स्वाभाविक प्रवृत्ति होरही है भीतर जाकर जो हवा बाहर निकलती है वह वैसी मैली होती है जैसे बरतन माज कर धोने से मट मैला पानी निकलता है इस वायु में कारवोनिकएसिडग्यास मूल वायु से सौगुना हो जाता है । शुद्ध वायु में १३) रु० में १ पाई के प्रमाण का०ए०ग्यास से रहता है यह अधिक होकर स्वास्थ्य भंग करता है इस की शुद्धि के "स्वरादित्यायव्यानाय स्वाहा"—यह आहुति है, "सुर्वरिति यजूंषि"—स्वः शब्द से यजुर्वेद की विद्या का

भी ग्रहण होता है. इस में सूर्य व व्यान का भी वर्णन है, "इषेत्वोर्जेत्वा"—यह यजुर्वेद का पहिला मन्त्र है जो उपासना कांड में ईश्वर और कर्मकांड में सूर्य परक है. सन्ध्योपासन में स्वः परमात्मा का द्योतक है, "स्वरितिव्यानः"—जो सब जगत् में व्यापक हो के सब को नियम में रखता है और सब के ठहरनेका स्थान तथा सुखस्वरूप है. इस से परमेश्वर का नाम स्वः है ॥

एतदक्षरमेतांच जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् ।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येनयुज्यते ॥म०अ०२। ७८॥

वेदज्ञ ब्राह्मण ओंकार व व्याहृति युक्त गायत्री को (दोनों) सन्धि कालों में जपता हुआ वेद पाठ के फल अर्थात् ब्रह्मप्राप्ति का स्वत्वाधिकारी हो जाता है॥

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकंद्विजः ।
महतोऽप्येनसोमासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ ७९ ॥

द्विज एकान्त में हजार बार प्रणव व्याहृति युक्त त्रिपाद सावित्री का जप करके एक महीने में मलिन संस्काररूप पाप से केंचुली की तरह छुट कर निर्मल हो जाता है ॥

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांत्रीणिवर्षाण्यतन्द्रितः ।
सब्रह्मपरमभ्येतिवायुभूतःखमूर्त्तिमान् ॥ ८२ ॥

जो निरालस तीन वर्षतक प्रतिदिन इस प्रणव व्याहृति सहित गायत्री का एकाग्रचित्त जप करता है वह वायु के तुल्य (खमूर्त्तिमान्) शुद्ध हुआ परमात्मा को प्राप्त होता है, किसी २ की सम्मति में अभ्येति के ठौर अध्येति पाठ से परमात्मा को जानलेता है, ऐसा अर्थ होता है । परमात्मा का जानना ही उस को पाने का हेतु है जो जानता नहीं वह पाता भी नहीं—

प्राचीन काल में यह प्रथा थी कि बहुत दिन तक कुसंस्कारों में पड़ने से जब चित्त में पापरूप मल अधिक हो जाता था तो ज्ञानी जन प्राणायामादि क्रिया से समय पूर्वक उक्तप्रकार जप किया करते थे, ऐसा करने से उनका चित्त स्थिर, प्रसन्न एवंधर्मरत हो जाता था. फलतः व्याहृतियों का जप व होम सारे सुख और मङ्गल का दाता है लोक तथा परलोक का साधक है— इति ।

महा व्याहृति व्याख्या ॥

ओ३म्-भूर्, भुवर्, स्वर्, ।

वेदों में अनेक मन्त्र ऐसे हैं जिन की आदि में " भूर्भुवः स्वः " इन तीन व्याहृतियों का योग पाया जाता है। विशेषतः गायत्र्यादि छन्दों में तो प्रथमोच्चार ही विहित है। अतएव विचारना चाहिये कि व्याहृति क्या वस्तु हैं। और इन के पाठ का क्या फल है ? ॥

वि, आङ, पूर्वक हृ धातु से क्तिन् प्रत्यय करने से व्याहृति शब्द सिद्ध होता है। " व्याह्रियन्ते अनेके अर्थाः याभिः तास्तिस्त्रो महाव्याहृतयः " अर्थात् जो बीजाक्षर विद्या व धर्म का भण्डार हैं। थोड़े में बहुत अर्थों का आधार हैं। इन के द्वारा अनेक अर्थ प्रकट किये जाते हैं। अतः इन महाव्याहृतियों की वेद शास्त्र में अधिक महिमा है. जैसे प्रणव अर्थात् ओंकार की व्याख्या बहुत गंभीर है. इसी प्रकार भूः भुवः स्वः इन व्याहृतियों की भी बड़ी सारगर्भिता है

अब प्रश्न होता है कि महाव्याहृति तो सात हैं * आपने तीन कैसे मानी ?

यद्यपि व्याहृतियां सात हैं परन्तु वेदशास्त्र में तीन ही प्रधान पक्ष हैं। जैसे चार वर्ण होते हुए भी मुख्य ३ वर्णों की व्याख्या होती है. चार वेद हैं किन्तु वेदत्रयी यह शब्द अधिक प्रचरित है दश प्राण होते हैं किन्तु " पंचप्राणः " अर्थात् पंचप्राण ऐसा सुभीते के लिये व्यवहार करते हैं एवं चार आश्रम हैं किन्तु तीन आश्रमों का बहुधा प्रसंग आया है—इसी प्रकार अनेक उत्तम कर्म हैं किन्तु यज्ञ अध्ययन दान ये ३ प्रधान माने गये हैं जैसा कि कठोपनिषद् में कहा भी है ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं; त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू । ब्रह्मयज्ञन्देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥

जो ब्रह्मचर्यादि तीन आश्रमों में आहवनीयादि नाम से अग्नि संचित करे उस का नाम त्रिणाचिकेत है। माता पिता और आचार्य इन तीन मुख्य शिक्षकों के सत्सङ्ग को प्राप्त होकर (त्रिकर्म०) यज्ञ अध्ययन दान करता हुआ

---

* भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्—

संन्यास आश्रम में जाता है। वह मानो जन्म मृत्यु के दुःख से तरने वाली नौका पर चढ़ता है। और परमेश्वर का शरण पाय भवसागर पार हो जाता है॥

सुतराम्–तीन लोक (१) तीन गुण (२) तीन पन (३) तीन काल (४) तीन देव (५) तीन पाद (६) तीन कार्य (७) तीन राशि (८) तीन फल (९) आदि का जिस भान्ति तिगड्डा है वैसे ही तीन व्याहृतियों का भी उपयोग है। आर्यों की देखा देखी ईसाइयों ने भी पिता पुत्र पवित्रात्मा का घपला किया है। और प्राटेस्टेण्ट रोमन कैथोलिक तथा ग्रीकचर्च ये उन के ३ थोक भी हैं। मुसलमान भी मुल्ला मौलवी व काजी इन तीन को मुख्य मानते हैं–नए वेदान्तियों ने जीव ईश्वर और ब्रह्म इन तीन का पिण्डाबांधा है॥

जो हो ऐसे तिक्का तो बहुत हैं अब प्रयोजन की बात पर ध्यान दीजिये—

जिस समय आप ब्रह्म यज्ञ अर्थात् संध्योपासन करने बैठते तब मार्जन व प्राणायाम और गुरुमन्त्र में पूर्वोक्त व्याहृति पाते हैं। वरन प्राणायाम में तो सातों ही व्याहृति हैं इसी प्रकार अग्निहोत्र में अग्न्याधान आदि मन्त्रों में व्याहृतियों का उच्चारण करते हैं उच्चारण ही नहीं वरन उन से आहुति देते हैं। षोडश संस्कारों में इन व्याहृतियों की कहीं सीधी कहीं किन्हीं मन्त्रों के साथ अनेक आहुतियां दी जाती हैं अब आप समझ गये होंगे कि हां व्याहृतियां भी कोई वस्तु हैं जिस से इन का इतना अधिक प्रचार व माहात्म्य है। महर्षि मनु जी कहते हैं कि " अकारंचाप्युकारं च मकारंच प्रजापतिः। वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति च॥ अ० २ श्लो० ७६ "॥

अर्थात् प्रजापति परमात्मा ने ऋक् यजुः साम इन तीन वेदों से क्रमशः अउम् इन अक्षरों और भूर् भुवर् स्वर् इन तीन व्याहृतियों को (निर्दुहत्) निकाला॥

---

(१) स्वर्ग, नरक, व मर्त्य लोक (२) सत रज तम (३) बाल युवा बुढ़ापा (४) भूत भविष्यत वर्त्तमान (५) माता पिता आचार्य, वा ब्रह्मा विष्णु, महेश, तीन गुणों से परमात्मा के तीन नाम (६) त्रिपादस्यामृतं दिवि–परमात्मा के ३ तीनपाद (अमृतम्) नाश रहित महिमा (दिवि) द्योतनात्मक अपने स्वरूप में हैं–१ अंश वा पाद से कार्य जगत् जानो अर्थात् कार्य जगत् प्रभु के एक कोने में पड़ा है (७) उत्पत्ति स्थिति प्रलय (८) गणित की पहिली दूसरी तीसरी जो वस्तु होती वही उत्तर में आती है। (९) आंवला हड़ बहेरा=यह त्रिफला और सोंठि मिर्च पीपर यह त्रिकुटा कहाता है॥

इ
से प्रतिमास सरलभाषा नागरी अक्षरों में छपता है। इसपत्र में वेदशास्त्रानुकूल धर्म की व्याख्या स्त्रीशिक्षा इतिहास व संक्षेपतः समाचार आदि लेख होते हैं॥

यह पत्र प्रायः समाजों व आर्यसुजनों की सहायता व गुणग्राहकता से १९ वर्ष से छपता है। पत्र का नामकरण महर्षि स्वामी दयानन्द स० जी महाराज ने किया था मूल्य १।)मात्र डाकव्यय सहित है खर्चछपाई देकर वचत का पैसा धर्मार्थ व्यय किया जाता है अतः दूना लाभ है॥

प्रार्थना पत्र इस पते पर भेजना चाहिये
मन्त्री आर्यसमाज फ़र्रुख़ाबाद–अथवा सम्पादक
भारतसुदशाप्रवर्त्तक–फ़र्रुख़ाबाद

आर्यगुर्जर पुस्तकालय फ़र्रुख़ाबाद–

इस पुस्तकालय में आर्यसमाज सम्बन्धी संस्कृत नागरी व उर्दू की पुस्तकें तथा कुछ अन्य भी जो उपयोगी हैं विकाऊ रहती हैं–तथा यज्ञकुण्ड और यज्ञपात्र धूप, यज्ञ का शाकल्य स्वामी जी महाराज का उत्तम चित्र, आदि पदार्थ भी रहते हैं॥

प्रणव तथा गायत्री महात्म्य छपेगा॥

गणेशप्रसाद शर्मा मैनेजर आर्यगुर्जर
पुस्तकालय फ़र्रुख़ाबाद॥